दीक्षा धर्म

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१ : आत्मा और धर्म

सुखकी भावना

सारे जगतके कर्मोंको देखनेसे मालूम होता है कि सभी जीव सुख चाहते हैं। एक भी जीव ऐसा नहीं है जो कि सुख चाहता न हो। अतएव सब अपनी शक्ति और साधनानुसार सुख प्राप्तिका प्रयत्न करते हैं।

आत्माका भव-भ्रमण

अनादि कालसे आत्मा भव-भ्रमण कर रहा है और इस संसार चक्रमें सुख-दुःखके अनेक अनुभव कर चुका है। उन सबका सार निकालें तो प्रतीत होता हैं कि आत्माने अब तक एक ही कार्य किया है—(१) शरीरकी प्राप्ति करना, (२) उसका पोषण करना, (३) उसकी देखभाल रखना और (४) समय आनेपर उसको छोड़के चले जाना।

उन्नत दशाकी प्राप्ति

आत्माके सारे भवभ्रमणका यह निचोड़ है। भ्रमणमें वह सुखकी इच्छा और दुःखसे द्वेष करता रहा है। लेकिन आकस्मिक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

संयोगोंमें दुःखके पर्वतके नीचे दबी हुई आत्माको जब दुःखसे द्वेष करने का मौका ही नहीं मिलता, तब दुःख-वेदनासे कर्मबंध मिटता है। मनुष्य वगैरह उच्च कोटिके जीवोंने कर्म-छेदनकी प्रवृत्तिसे ही उन्नत दशा प्राप्तकी है। अन्य तमाम जीवोंसे मनुष्यने कुछ विशेष प्रगति की है और इसी कारण हम सुख दुःख, सार असार, धर्म अधर्म वगैरहका विचार कर सकते हैं।

मनुष्यकी विशेषताका प्रयोग

हमको प्राप्त हुई यह विवेक बुद्धि मनुष्यकी विशेषता है और उसी विशेषताका प्रयोग विशेष उन्नत दशा प्राप्त करनेके लिये भूतकालमें महात्माओंने किया है। अभी भी वैसा ही हो रहा है।

मुक्त आत्मा

जो महात्मा इस कर्म-बन्धनको स्पष्ट देख सके, उन्होंने उपाय सोच कर अपनेको बंध तोड़नेमें लगाया और संसार पर विजयी होकर आत्महित सिद्ध कर सके। कर्मबंधसे मुक्त होकर वे सच्चा सुख प्राप्त कर सके और अभी भी उपभोग कर रहे हैं। ऐसे आत्माको हम मुक्त आत्मा कहते हैं।

धर्म मार्ग

और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये उन्होंने अनुभव सिद्ध जो मार्ग बताया है उसको धर्म-मार्ग कहते हैं। जो लोग सुखका मार्ग नहीं पाते लेकिन उसका अस्तित्व स्वीकार कर सुखकी प्राप्तिके लिये प्रवृत्त होते हैं उनको हम धर्म-मार्ग प्रवृत कहते हैं।

प्रत्येक जीवका अन्तिम आशय

अन्तिम आशय तो सुख प्राप्तिका ही है और इसमें कोई अन्तराय करे तो मनुष्य अपनी सर्व शक्ति लगाकर आमरणांत युद्ध खेलता है। अन्तमें दोनोंमें रोष और द्वेषकी भावना प्रगट होती है और कर्मबंध होते हैं। यह दुःखकी शुरुआत है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

धर्मकी व्याख्या और आशय

दुर्गतिसे जो बचाता है वह धर्म है, ऐसी धर्मकी व्याख्या है। विविध नामोंके बहुत धर्म हैं, लेकिन उन सब धर्मोंका आशय कर्मछेदन करके चिरस्थायी सुखकी प्राप्ति ही है और सब आत्माओंमें परस्पर कम घर्षण हो ऐसे उपायोंको बताते हैं। धर्मने मनुष्यकी शांति और सुखके लिये नीति-नियम बनाये हैं और क्रमशः शांतिमय जीवनसे आत्माकी मुक्तिका मार्ग बताया है।

धर्मका आदर्श

जिसने धर्मकी स्थापनाकी है उसको मनुष्य अपने धार्मिक जीवन का आदर्श बना लेता है और उसको अपने सामने रख कर यथाशक्ति अपना आत्म-विकास कर रहा है।

अनुयायीके दो वर्ग

धर्मके दो प्रकारके अनुयायी होते हैं। एक वर्ग तो, जो आदर्श माना गया है उसको ही अक्षरशः सर्व शक्ति लगा कर, अनुसरता है और दूसरा वर्ग विशेष कर्मबद्ध जीव जो अपनी सुविधाको रखता है और कठिनाइयोंको न सहते तारकके बताये हुए मार्गसे आत्म हित साधता है। पहिले वर्गका एक ही काम है और वह केवल तारकके मार्ग पर चलनेका। वह सांसारिक तमाम प्रवृत्तियोंका त्याग करता है इसीलिये इस वर्ग के व्यक्ति त्यागी कहलाते हैं।

त्यागी वर्ग

आत्म विकासके मार्ग में प्रत्येक धर्मका त्यागी वर्ग संसारी धर्मानुयायीको उपकारी होनेसे और शांत जीवन बितानेसे पूज्य होता है और उसकी संसारी लोग यथाशक्ति भक्ति करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि उनकी सेवा के लिये उपयोग किये गये साधन और शक्ति सच्चे सुख साधक हैं ऐसा मानते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस पूज्य बुद्धिका कारण

इसका कारण यही है कि त्यागियोंने जो मार्ग लिया है वह धर्मिष्ट के लिये आदर्श है अतएव त्यागमार्ग समग्र विश्वका पूज्यनीय और आराध्य है और यही कारण है कि उसके आराधक सर्वत्र पूज्य हैं। संसारी के मुकाबिलेमें उनका जीवन विशेष स्थिर और विशेष शांत है। इस सुख-शांति का कारण है—आत्माकी सांसारिक प्रवृत्तिमार्गमें अरुचि और जहां यह जितनी ही ज्यादा है वहां उतना ही विशेष सुख, शांति और निर्भयता है। संसार-चक्रके तमाम बंधनों और संसारके सभी व्यवहारोंका त्याग कर देनेसे ही सभी धर्ममें त्यागका और त्यागी स्थान सर्वोच्च है।

धर्मका मार्ग

जिन्होंने सच्चा सुख प्राप्त किया है और जिन उपायोंसे किया है वे दूसरोंको उन उपायोंका प्रयोग करनेके लिये ही समझायेंगे। प्रत्येक धर्म स्थापक ऐसा ही करते हैं और अंतिम आदर्शकी प्राप्तिके लिये धर्म मात्रका वही मार्ग है।

विविध धर्मोंके तत्त्वोंमें समानता

जगतके धर्मोंके मूलभूत सिद्धान्तमें बहुत साम्य है अर्थात् उनमें विरोध नहीं होता। सिर्फ धर्मोंकी गणना औरतत्त्व ज्ञानमें सूक्ष्म स्थूलकी मात्रा का भेद होता है लेकिन अहिंसा, सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्य या तो दूसरें रूपमें दान, शील, तप और भावनाकी तो प्रत्येक धर्ममें मूलगत जरूरत है।

दीक्षा धर्म और दीक्षित पूज्य है

इन मूलभूत सिद्धान्तोंके पालनके लिये जीवन समर्पण और सांसारिक व्यवहार और बंधनका त्याग करना यह है धर्म दीक्षा और उसी मार्गसे अपना हित सिद्ध कर दूसरोंको हित सिद्ध करनेका आदर्श प्रकट करना वह प्रत्येक दीक्षितका कर्त्तव्य है। जहां धर्म है, जहां आत्म-विकासकी भावना है, जहां परभव और जन्म मरणका भय है वहां दीक्षा हमेशा धर्म ही रहेगा और दीक्षित पूज्य रहेंगे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

२ : दृष्टि विकार

वर्तमान

आज पवित्र दीक्षा बहुतोंके मन अनावश्यक-सी मालूम होती है। इसका कारण वर्तमान भौतिक युगकी भावना है।

शरीर और आत्मा

जीवनमें दो तत्त्व मुख्य हैं:—(१) आत्मतत्त्व और (२) जड़तत्त्व। जड़ परमाणुओंसे सने हुए इस शरीरमें अनन्त कर्म बन्धनोंको उच्छेद करनेवाली आत्मा आबद्ध हुई। जब आत्मा जाग्रत होता है तब वह शरीरसे अपने भृत्य की तरह काम लेता है और मुक्ति तककी उन्नति कर सकता है। आत्मा यदि सुप्त अवस्थामें हो तो वह मोह का निमित्तभूत बन कर पौद्गलिक सुखमें मग्न होकर निगोदमें जाता है।

माता-पिताका कर्तव्य

जो ज्ञानी हैं उनको बाल्यावस्थासे ही बालकोंमें धर्मके संस्कार डालने चाहिए और प्रत्येक क्षण विकसित करने चाहिए। बाल्यावस्था ग्रहणकाल है अतएव तब डाले गये धार्मिक या अधार्मिक संस्कार जीवन भर टिकते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भूतकालका भारतीय जीवन

आजसे सौ वर्ष पहले जब कि जीवन स्थिर, शांत और धर्ममय था, जब जीवन निर्वाहके साधन जन्मसिद्ध हककी तरह प्राप्त थे तब प्रत्येक मां-बापको अपने बाल-बच्चोंके लिए विचार आता और वह उनके आत्महितका। आत्महितके लिए अपने गुरुके पास शिक्षा दिलवा, कौटुम्बिक धर्ममय आबोहवामें वृद्धि कर, धार्मिक पर्वोंमें बालकको भाग लिरा कर व धार्मिक संस्कार दे डालते। अतएव उस जमानेमें धर्मपर रुचि थी, धर्म-गुरुके प्रति पूज्यभाव था और उनको तारक माना जाता था। धर्म स्थान आत्म विकासके परम धाम माने जाते थे। इस तरह सर्वत्र सुख और शांति प्रवर्तती थी।

वर्तमान जीवन

आज परिस्थिति विपरीत हो गई है। आज समाज व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है। जीवन-निर्वाह मुश्किल हेा गया है। पाश्चात्य शिक्षाका मोह है और कुटुम्बका धार्मिक वातावरण नष्ट हो चुका है। सुधारके बाह्य रूपमें लोक आकृष्ट है और आत्मभावना नष्ट हो गई है।

आजके नवयुवकके जीवनकी सार्थकता

धर्म और धर्मगुरु इस स्वच्छन्द और स्वेच्छाचारके विरुद्ध हैं और अंकुश रूप हैं लेकिन इस अंकुशके लाभालाभका नवयुवकको ख्याल नहीं होनेसे वे उनसे हमेशा दूर रहनेकी चेष्टा करते हैं। उनको धर्म गुरुकी रहन-सहन, जीवन और वर्ताव अव्यवहारिक लगते हैं और आजीविका प्राप्त करनेमें, लग्नमें और पत्नीकी सेवामें सारा जीवन खतम कर देनेमें सार्थकता समझते हैं।

धर्म और धर्म-गुरुके प्रति अरुचिके कारण

ऐसी परिस्थितिमें जिनको उनका परिचय नहीं है और जिनने धर्म और धर्म गुरुओंकी महत्ता और आवश्यकतापर विचार नहीं किया

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है उन लोगोंमें धर्म, धर्म गुरु और धर्म स्थानोंके प्रति भक्तिभाव कैसे हो सकता है ? और इस भक्तिभाव न होनेकी वजहसे वे युवक धर्म और धर्मगुरुओंका उच्छेद चाहें तो वह स्वाभाविक है। आज त्याग मार्गके प्रति जो विरोध दिखाई देता है और जिसको संभालनेके लिए धर्म प्रेमियों को अथक परिश्रम करना पड़ता है, साधु जीवनसे ऊब कर उसे तुच्छ, निरस और अनावश्यक समझकर जो हँसी की जाती है, दीक्षाको मुश्किल बनानेकी चेष्टा देखी जाती है दीक्षितको संन्यास छुड़ा फिर संसारमें लाने का प्रयत्न किया जाता है और संसारमें मग्न रहनेकी भावनाओंको जो पोषा जाता है उन सबका कारण भौतिक सुधारका तूफान है और अपनी विकृत दृष्टिसे त्यागियोंको देखनेकी वृत्ति है।

त्याग मार्गके विरोधके साधन

इस वृत्तिसे दीक्षाके विरोधमें अनिच्छनीय प्रचार हो रहा है और दीक्षा और दीक्षितके महत्वको तुच्छ करनेकी चेष्टा हो रही है। इस प्रचारकी चार युक्तियां हैं। वे हैं दीक्षाके साधन, नूतन दीक्षितकी साधु संस्थामें विषम स्थिति, दीक्षामें सहायकका स्वार्थी मानस और साधु संस्थाकी बदियां। लेकिन ये चारों कारण बनावटी और अतिशयोक्तिसे भरपूर हैं और भोली जनताको पवित्र त्याग मार्गके विरुद्ध उत्तेजित करते हैं।

वे कहते हैं कि दीक्षामें सहायकोंका स्वार्थ है क्योंकि दीक्षा देने वाले माता-पिताको धन प्राप्तिका स्वार्थ होता है और मदद करनेवालों को भी वही स्वार्थ है। साधु भी दीक्षितकर अपनी सेवाके लिए एक गुलाम बनाना चाहता है और फिर मनमाना त्रास देता है और दीक्षित दीक्षाके बाद आत्महित साध नहीं सकता अर्थात् शांतिके लिए संसार त्याग कर दीक्षा लेता है उसके बनिस्पत गुलामीके वातावरणमें वह मुरझा जाता है और संसार में वापस आनेकी इच्छा करता है। अन्तमें जो साधु पंच महाव्रतधारी कहलाते हैं। वे वस्तुतः वैसे नहीं हैं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

साधु संस्था पूज्य नहीं है क्योंकि शिथिलाचार, स्वार्थ उसमें भरा हुआ है। इन चार युक्तियोंसे वे दीक्षाका विरोध करते हैं।

न्याय दृष्टिकी आवश्यकता

हम किसी संस्थाको न्याय तब ही दे सकते हैं जब कि उसकी दृष्टिसे हम सोचें। जो भोजन करने बैठा हो वह, भीखारी भीख क्यों मांगता है, उसके कारणका विचार करें तब ही उसको सच्ची परिस्थिति मालूम होती है, नहीं तो मजाक करके भगा देनेमें ही इति-कर्तव्य समझता है।

त्याग मार्गमें भी ऐसा ही है और उस संस्थाके बारेमें उसको ही विचार करनेका अधिकार है जो त्यागी हो। जिसने संसारका सर्वथा त्याग कर अपने शरीरके भीतरकी दिव्य आत्म-शक्तिके विकासके लिये ही सब समर्पण किया हो उसको संसारी, जो कि कषायासक्त है, कभी नहीं समझ पायेगा।

संसारी और त्यागीके ध्येय

संसारीका ध्येय है देह पुष्टिमें समग्र शक्तिका उपयोग और त्यागीका ध्येय है शरीरके साधनसे आत्मोन्नति। संसारीके लिये शरीर सुखकी साधना ही आदर्श है और त्यागीकी प्रत्येक प्रवृत्ति आध्यात्मिक विकास के लिए होनेसे उसकी साधना आत्मोद्धारकी है। इस तरह दोनोंके ध्येयमें पूर्व पश्चिमका अन्तर है।

न्याय करनेमें अयोग्य

जिनको खुदका कुछ ज्ञान या अनुभव न हो, जो उच्च भावना झेलनेकी अपनेमें ताकत नहीं रखते वे संसारी मनुष्य निर्जरारक्त त्यागियों को न्याय देनेमें योग्य कैसे हो सकते ? और जब योग्यता है ही नहीं तब उसके न्यायमें कितना तथ्य हो सकता है ?

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com